श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री
श्री सुमनमुनिजी की साहित्य साधना

❑ दुलीचन्द जैन "साहित्यरत्न"

सत्साहित्य का महत्व –

समाज को जागृत करने में सत्साहित्य का अत्यधिक योगदान है। साहित्य दो प्रकार का होता है – प्रेयस्कारी और श्रेयस्कारी। प्रेयस्कारी साहित्य मनोरंजन वर्द्धक होता है। श्रेयस्कारी साहित्य जन-जन का कल्याण करने वाला व जीवन में उदात्त भावनाओं को प्रसारित करने वाला होता है। भारतीय संस्कृति में साहित्य के **"सत्यं-शिवं-सुन्दरम्"** रूप की त्रिवेणी को महत्व दिया गया है अर्थात् वह यथार्थ हो, सुन्दर हो और लोक कल्याणकारी हो।

जैन धर्म में ज्ञान को श्रेष्ठ माना गया है। भगवान् महावीर ने जीवन की पूर्णता का जो मार्ग बतलाया उसके तीन अंग हैं – श्रद्धा, ज्ञान और कर्म। इन तीनों की समन्वित अराधना ही मनुष्य के जीवन को उच्चता प्रदान करती है अतः जैन संतों को ज्ञान की निरंतर आराधना करने को कहा गया है। भगवान् महावीर ने कहा – "ज्ञान का प्रकाश ही सच्चा प्रकाश है क्योंकि उसमें कोई प्रतिरोध नहीं है, रुकावट नहीं है। सूर्य थोड़े से क्षेत्र को प्रकाशित करता है किन्तु ज्ञान सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करता है। [१]

जैन परंपरा में सत्साहित्य –

जैन परंपरा में सत्साहित्य का अध्ययन, अध्यापन, स्वाध्याय व प्रचार-प्रसार आदिकाल से ही होता रहा है। आज भी श्रमण-श्रमणियां प्रतिदिन सूत्रों का पाठ करते हैं एवं शास्त्र ग्रन्थों का पारायण करते हैं। अनेक श्रावक व श्राविकाएं भी प्रतिदिन उनके प्रवचन सुनते हैं तथा स्वयं भी धर्मग्रन्थों को पढ़ते हैं। जैन धर्म में इस बात पर जोर दिया गया कि न केवल श्रमण-श्रमणियां किन्तु श्रावक-श्राविकाएं भी सत्साहित्य का ही अध्ययन करें। इस प्रकार का साहित्य जो विषय-वासना को उद्दीप्त करता हो, भोगाकांक्षाओं की वृद्धि करता हो, चित्त को विचलित करता हो व मन की समता को भंग करता हो, वह अध्ययन के योग्य नहीं अपितु अयोग्य माना गया है। इसके विपरीत उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे इस प्रकार के साहित्य का निरंतर स्वाध्याय करें जो मन को विषय वासनाओं से दूर हटाता हो, मन की चंचलता को कम करता हो और जीवन को कल्याणकारी मार्ग की ओर अग्रसर करता हो। भगवान् महावीर ने ज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा है कि – "जिससे तत्व का बोध होता है, चित्त का निरोध होता है तथा आत्मा विशुद्ध होती है, वही सच्चा ज्ञान है।[२]

जैन साहित्यकारों का अवदान –

जैन समाज के साहित्यकारों ने विपुल मात्रा में लोक कल्याणकारी साहित्य का सृजन किया जिसका अभी तक ठीक प्रकार से मूल्यांकन नहीं हुआ है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़,

१. अर्हत् प्रवचन १६/४७
२. मूलाचार ५८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी आदि-आदि भाषाओं में जैन संतों व श्रावकों ने साहित्य की सभी विधाओं में उत्तम साहित्य का निर्माण किया है। जैन अंग/आगम साहित्य अर्द्धमागधी प्राकृत में उपलब्ध है जिसकी प्रकृति दार्शनिक व आध्यात्मिक है। अपभ्रंश जैन साहित्य ने हिन्दी काव्य को छंद, शैली व कल्पना-प्रवणता प्रदान की। तमिल एवं तेलुगु भाषाओं का प्राचीन साहित्य उच्च कोटि की रचनाओं से समृद्ध है। तमिल भाषा के महान् ग्रन्थ "तिरुक्कुरल" को पाँचवा वेद माना जाता है। बहुत से विद्वानों की मान्यता है कि यह एक जैन कृति है। इसके रचयिता महान् संत तिरुवल्लुवर थे। मध्यकालीन जैन साहित्य अध्यात्म एवं भक्ति प्रधान है, पद-समृद्ध है। इस पर जैन सिद्धांतों का समीचीन प्रभाव पड़ा है। इस सम्बंध में "महावीर वाणी के आलोक में हिन्दी का संत काव्य" शोध ग्रन्थ में डॉ. पवनकुमार जैन का निम्न कथन दृष्टव्य है :– "जब हम हिन्दी के संत साहित्य का अवलोकन करते हैं तब पता चलता है कि उसमें जिन नैतिक व मानवीय मूल्यों को प्रतिपादित किया गया, वे वही है जिन्हें सदियों पूर्व तीर्थंकर महावीर ने तत्कालीन जन-जीवन में प्रचारित किया था यथा – समता, संयम, सम्यक्त्व, निरहंकारिता, अहिंसा, क्षमा, अपरिग्रह एवं अचौर्य आदि।" जैन श्रमणों व श्रावकों ने काव्य-ग्रन्थ, कथा साहित्य, निबंध, नाटक व साहित्य की अन्य सभी विधाओं में श्रेष्ठ रचनाओं का सृजन करके साहित्य के भंडार को समृद्ध किया है। जैन श्रमण और श्रमणियाँ, जो निरंतर ग्रामानुग्राम, नगर-नगर विहार करते हैं, प्रतिदिन प्रवचन देते हैं, उन्होंने अपनी दैनंदिनी, धर्मचर्या में व्यस्त रहने के बावजूद भी अध्यात्म, नीति व सदाचरण से सम्बन्धित समृद्ध प्रवचन साहित्य का निर्माण किया है। अभी तक इस विपुल साहित्य का थोड़ा ही अंश प्रकाशित हुआ है लेकिन जो भी प्रकाश में आया है वह अपूर्वसाहित्य है। आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज, आचार्य श्रीआत्मारामजी महाराज, आचार्यप्रवर श्रीआनन्दऋषिजी महाराज, आचार्य श्रीनानालालजी महाराज, जैन दिवाकर श्रीचौथमलजी महाराज, कविश्रेष्ठ उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी महाराज, आगमज्ञ युवाचार्य श्रीमधुकरमुनिजी महाराज, महान् विद्वान् आचार्य श्रीदेवेन्द्रमुनिजी महाराज के अतिरिक्त सहस्रों श्रमणों व श्रमणियों के प्रभावशाली प्रवचनों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं। यह साहित्य न केवल जैन आचार व तत्वज्ञान का प्रतिपादन करता है परन्तु जन-जन को व्यसन रहित व सदाचार युक्त जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाला भी है।

श्री सुमनमुनिजी महाराज का योगदान –

श्रमण संघीय मंत्री व सलाहकार श्री सुमनमुनिजी महाराज आधुनिक जैन समाज के एक श्रेष्ठ संत, गंभीर चिंतक व आगम-विवेचक हैं। आपकी साहित्य-साधना की भी अभी तक ठीक प्रकार से समीक्षा नहीं हुई। इसका एक ही प्रमुख कारण है-आपकी प्रसिद्धि-परांगमुख वृत्ति। आप अपने स्वयं के बारे में कुछ भी प्रचार नहीं करते तथा निरंतर साधना में निमग्न रहते हैं। आपको जैनागम व अन्य शास्त्रों का तलस्पर्शी ज्ञान है तथा आप उसके श्रेष्ठ व्याख्याता भी है। खेद है कि वर्षों तक आपके प्रवचनों व व्याख्यानों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सका।

श्रमण जीवन अंगीकार करने के बाद आपने अपने जीवन के तीन लक्ष्य निर्धारित किये – १. संयम साधना, २. ज्ञान साधना व ३. गुरु-भक्ति। आपने विभिन्न भाषाओं का अध्ययन किया तथा जैन, बौद्ध व वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थ पढ़ें। आपको प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी आदि विभिन्न भाषाओं का विशद ज्ञान है तथा आप इन सभी भाषाओं में अध्ययन-अध्यापन करते करवाते हैं। आपने जैनागम का विशेष अध्ययन किया तथा आगमों की व्याख्याओं व टीकाओं आदि ग्रन्थों का पारायण किया। श्वेताम्बर साहित्य के अतिरिक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपने दिगम्बर व अन्य मान्यताओं के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया।

भाषा-शास्त्री

आप एक भाषा शास्त्री हैं तथा हिन्दी भाषा पर आपका अधिकार असाधारण है। प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी व्याकरण का सम्यक् ज्ञान होने के कारण आपकी भाषा शुद्ध एवं प्रांजल है तथा विषय का सटीक विवेचन करती है। आप एक शब्द-शिल्पी हैं तथा विषय के अनुकूल शब्दों का संगठन करने में समर्थ हैं। आपकी शैली विश्लेषणात्मक है। आप निरंतर अपने प्रवचनों में सूत्र ग्रन्थों का सरल, सरस व प्रवाहमय विवेचन करते हैं। भगवान् महावीर के जन-कल्याणकारी एवं सर्वजन हितकारी संदेश को सम्यक् प्रकार से अभिव्यक्त करने में आप सिद्धहस्त हैं।

प्रवचन-शैली –

आपकी प्रवचन शैली सरल, सरस, मधुर तथा तात्विक प्रसंगों का सहज विश्लेषण करने वाली है। आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि सूत्रों पर आपके प्रवचन जिन-जिन लोगों ने सुने हैं वे आप से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। सूत्रों की व्याख्या के साथ आप अनेक उदाहरणों व बोध-प्रसंगों द्वारा विषय को रोचक बना देते हैं। प्रभु महावीर की वाणी का सुन्दर एवं हृदयग्राही विवेचन सुनकर श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते हैं।

सूक्तियों का प्रभावशाली प्रयोग –

आप अपने प्रवचनों में स्वतः स्फूर्त सूक्तियों का प्रयोग करते हैं कि विषय सहज व रसपूर्ण बन जाता है। आपके प्रवचनों के इस प्रकार के उद्धरण आपकी भाषा शैली व विचारों की विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। बच्चों को संस्कारित करने के महत्व पर आपने कहा – "हम अपनी संतान को सुविधा दें, विलासिता नहीं, संस्कारों की संस्कृति दें, विलासिता का विष नहीं।"

कुछ ऐसे दुर्गुण हैं जो मनुष्य को पतन की ओर धकेल देते हैं। उनके बारे में आपने कहा - "दर्प "अहंकार" और कंदर्प "वासना" ये दो तत्व हैं जो जीवन को नीचे गिराते हैं। वासना के बारे में आपका निम्न वक्तव्य विषय को सरलता से अभिव्यक्त करने में समर्थ है – "वासना तो हर शरीर में, हर मन में है। आँखों से हम विषय को ग्रहण करते हैं लेकिन जब तक मन उसके साथ नहीं जुड़ता तब तक वे विषय हमारे कर्मबंध के कारण नहीं बनते ।" आज के युग में मनुष्य के विचारों और कर्मों में एक अंतर आ गया है। आपका कथन है कि-"सिद्धांत और जीवन व्यवहार का समन्वय एक कठिन साधना है।" जैन धर्म में कर्म के सिद्धान्त को बहुत महत्व दिया है। आपने इसे निम्न सूक्ति द्वारा बड़ी ही सहजता से व्यक्त किया है – "अगर कर्म किया नहीं हो तो कर्म लगेगा नहीं और अगर कर्म किया है तो उसका फल अवश्य मिलेगा, इसमें संदेह की कोई गुंजाईश नहीं।"

आप अपने प्रवचनों में स्वाध्याय पर बहुत जोर देते हैं। आपका कथन है – "प्रेरक पुस्तकों का स्वाध्याय जीवन को निरंतर ऊर्ध्वगामी बना देता है।" इसी प्रकार आप हमेशा जीवन को साधनामय बनाने की प्रेरणा देते हैं। आपके शब्दों में – "हम अपनी सुविधा व साधनों के लिए बोझ उठाते हैं, साधना के लिए कोई बोझ नहीं उठाता पड़ता। उसमें तो मन को साधना पड़ता है।" साधक की प्रथम आवश्यकता है कि वह अपने मन पर नियंत्रण करे। आपने कहा – "मन के विचार ठीक न हो तो मालाएं फेर फेर कर उसका ढेर लगा दें तो भी साधना सधने वाली नहीं है।" धन के उपार्जन पर आपके विचार है – "धन का उपार्जन करना चाहिए पर उपार्जन वही उत्तम है जो धर्म की सीमा में रहकर किया जाये।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महान् तत्वज्ञ –

आप एक महान् तत्वज्ञानी पंडित हैं। जैन तत्त्वज्ञान पर आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिसमें आपने तत्त्वज्ञान को सरलता से अभिव्यक्त किया है। आप द्वारा रचित ग्रन्थ "तत्व-चिंतामणि" जैन तत्वज्ञान का अत्यन्त रोचक ग्रन्थ है। तीन भागों में प्रकाशित यह एक ज्ञानवर्द्धक रचना है। आपके सभी ग्रन्थों में जैनागम का उद्धरणों सहित विस्तृत विवेचन मिलता है।

स्पष्ट वक्ता –

आप एक निर्भीक वक्ता हैं। समाज में व्याप्त धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों एवं पाखण्डों पर आप खुल कर प्रहार करते हैं। अखिल भारतीय जैन श्रमणसंघ के पदाधिकारी आपके सुस्पष्ट विचारों से अत्यधिक प्रभावित है।

आपका दृष्टिकोण सर्वथा असाम्प्रदायिक है। श्रमणसंघ के सलाहकार, मंत्री एवं उपप्रवर्तक जैसे तीन-तीन वरिष्ठ पदों पर रहते हुए भी आपके मन में अन्य सम्प्रदायों के प्रति समादर की भावना है। आज के युग की भीषण समस्या है – साम्प्रदायिकता की भावना। साम्प्रदायिकता को दूर करने का एक मात्र मार्ग है कि व्यक्ति बिना दुराग्रह के सत्य को समझने का प्रयास करें। जब सही समझ आ जाती है तो साम्प्रदायिकता का भाव तिरोहित हो जाता है। इस संबंध में आपका निम्न कथन द्रष्टव्य है – "यह गुरु हमारे कुल का है, यह हमारे सम्प्रदाय का है, यह ही हमारा रिवाज है, यही हमारा संघ है, यह जो हमारा ममभाव है, इस ममभाव के रहते अक्सर हम सत्य को झूठला देते हैं। इस अपने ममभाव में, रागभाव में पड़कर ही अपने धर्म को, सम्प्रदाय को, परंपरा को अच्छा मानते हैं, उसके साथ बराबर जुड़े रहते हैं। लेकिन जब सत्य का दर्शन होता है, उसकी झलक पड़ती है तो विचार करते हैं कि भले ही अपना हो, मगर दूषित है तो दूषित ही कहना चाहिए, अधूरा है तो अधूरा ही कहना चाहिए, अपूर्ण को अपूर्ण कहने में कोई बुराई नहीं है।"

आप एक निरंहकारी संत हैं, आप प्रतिभा व पाण्डित्य का प्रदर्शन करने में विश्वास नहीं करते। आप अपने आपको लोकेषणा से दूर रखते हैं। आपकी रचनाओं में विश्व-बंधुत्व व विश्व-जागरण का भाव प्रतिबिम्बित है।

विशद अध्ययन

श्रमण दीक्षा ग्रहण करने के बाद आपने पंडितवर्य प्रवर्तक श्रीशुक्लचंदजी महाराज तथा गुरुदेव श्रीमहेन्द्र-कुमारजी महाराज के सान्निध्य में आगम व आगमेतर साहित्य व अनेक भाषाओं का अध्ययन किया। इतिहास आपका अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। आपने जैन धर्म के इतिहास का विशद् अध्ययन किया एवं उसके हार्द तक पहुँचने का प्रयास भी किया।

साहित्य-निर्माण –

विशद अध्ययनोपरांत आपने लेखन व ग्रन्थों के संपादन का कार्य प्रारंभ किया। आपके द्वारा संपादित **"श्रमणावश्यक सूत्र"** सन् १६५८ में मूलपाठ, अनुवाद व टिप्पणि के साथ प्रकाशित हुआ। **"तत्व चिन्तामणि"** भाग १, २ व ३ की रचना सन् १६६१ से १६६३ तक हुई। **"श्रावक-कर्त्तव्य"** का प्रकाशन सन् १६६४ में हुआ। श्रावकाचार पर यह एक उत्तम कृति है। पंजाब के कविहृदय सुश्रावक श्रीहरजसराय की लोकप्रिय कृति **"देवाधिदेव-रचना"** का अनुवाद, संपादन व मुद्रण सन् १६६४ में हुआ। इसी वर्ष सुश्रावक लाला रणजीतसिंह कृत **"बृहदालोयणा"** नामक कृति का अनुवाद व विस्तृत विवेचन प्रकाशित हुआ। महान् संत श्रीगेंडेरायजी महाराज की जीवनी **"अनोखा तपस्वी"** शीर्षक से सन् १६६५ में ही प्रकाशित हुई। सन् १६६८ में परम श्रद्धेय प्रवर्तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीशुक्लचंद्रजी महाराज की यादगार में उनकी जीवनी **"शुक्ल-स्मृति"** के नाम से प्रकाशित हुई। आपका सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ **"पंजाब श्रमण संघ गौरव"** के नाम से सन् १९७० में प्रकाशित हुआ जिसमें आचार्य श्रीअमरसिंहजी महाराज की गौरव गाथा, पंजाब श्रमणसंघ परंपरा का इतिहास व विशिष्ट संतों का परिचय सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त आपने **वैराग्य इक्कीसी** आदि कतिपय लघु पुस्तकों का भी संपादन किया। सन् १९८८ में बोलारम चातुर्मास में महान् तत्वज्ञ श्रावक श्रीमद् रायचंद्र मेहता रचित **"आत्म-सिद्धि शास्त्र"** पर आपके बहुत ही बोधपूर्ण प्रवचन हुए जिन्हें सुनकर श्रोता अत्यधिक प्रभावित हुए। ये प्रवचन **"शुक्ल-प्रवचन"** के नाम से चार भागों में प्रकाशित हुए। इनका प्रथम भाग के.जी.एफ. में सन् १९९१ में, द्वितीय भाग वानियम्वाडी में सन् १९९२ में एवं तृतीय व चतुर्थ भाग चेन्नई टी.नगर में सन् १९९३ में प्रकाशित हुआ। आपने उत्तराध्ययन सूत्र के अति महत्वपूर्ण २९ वें अध्ययन **"सम्यक्त्व-पराक्रम"** पर बहुत ही वृहद् अत्यन्त मार्मिक प्रवचन दिये। इन्हें टेप करके रख लिया था। अब ये लगभग ६०० पृष्ठों में टाइप हो गए हैं तथा ४-५ छोटी-छोटी पुस्तकों में शीघ्र प्रकाश्यमान है।

साहित्य का निःशुल्क प्रचार –

आप द्वारा रचित सम्पूर्ण साहित्य **भगवान् महावीर स्वाध्याय पीठ'** से स्वाध्यायार्थ निःशुल्क प्राप्त किया जा सकता है।

सृजनशील साहित्यकार –

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि पंडित प्रवर श्री सुमनमुनि जी ने अनेक ग्रन्थों की रचनाएं की हैं, जिनमें से कतिपय ग्रन्थों ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की –

१. शुक्ल प्रवचन भाग १ से ४

२. पंजाब श्रमण संघ गौरव (आचार्य अमरसिंहजी महाराज)

३. अनोखा तपस्वी (श्रीगेंडेरायजी महाराज)

४. वृहदालोयणा (विवेचन)

५. देवाधिदेव रचना (विवेचन)

६. तत्व-चिंतामणि भाग १ से ३

७. श्रावक कर्त्तव्य (विवेचन)

८. शुक्ल-ज्योति

९. शुक्ल-स्मृति

१०. सम्यकत्व-पराक्रम (शीघ्र प्रकाश्य)

इसके अतिरिक्त आपने स्वाध्यायी भाई-बहनों के लाभार्थ सामायिक, प्रतिक्रमण, गीत-संग्रह आदि पुस्तकें हिन्दी व अंग्रेजी में प्रकाशित की है। आपकी प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त परिचय आगे के पृष्ठों में दिया जा रहा है।

✣ ✣ ✣

शुक्ल प्रवचन : भाग १ से ४

प्रज्ञाशील संत श्री सुमनमुनि जी महाराज की सर्वोच्च कृति है - "शुक्ल-प्रवचन"। यह महान् तत्त्वज्ञानी श्रावक श्रीमद् रायचन्द्रभाई मेहता प्रणीत "आत्म-सिद्धि-शास्त्र" का विशद् विवेचन है। "आत्मसिद्धि-शास्त्र" १४ पृष्ठों की एक छोटी सी किताब है जिसमें मात्र १४२ दोहे हैं। यह एक गेय ग्रन्थ है तथा जैन विद्या के जिज्ञासुओं का हृदयहार है। छोटा सा ग्रन्थ होते हुए भी यह ज्ञान का अद्भुत खजाना है तथा श्रावक-श्राविकाओं में ही नहीं,

४९, बर्किट रोड, टी.नगर, चेन्नई ६०० ०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण-श्रमणियों में भी अत्यन्त लोकप्रिय है। इसके एक-एक दोहे में आत्म-तत्त्व का ज्ञान एवं सिद्धि प्राप्त करने का गम्भीर भाव भरा हुआ है। महाकवि बिहारी प्रणीत "सतसई" के बारे में जो बात कही गई, वह इस पर भी खरी उतरती है –

"सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर।।"

यह ग्रन्थ भी आकार में अत्यन्त संक्षिप्त है पर आत्म-सिद्धि का मार्ग बतलाने की विलक्षण क्षमता रखता है। इस छोटे से ग्रन्थ पर श्रीसुमनमुनिजी म. ने एक सहस्र से भी अधिक पृष्ठों में वृहद भाष्य लिखा है जो "शुक्ल-प्रवचन" के नाम से चार भागों में प्रकाशित हुआ है। पूज्य श्रीसुमनमुनिजी की कीर्ति-गाथा को गौरव पर पहुंचाने वाला यह महान् ग्रन्थ है।

मूल लेखक का परिचय -

श्रीमद् रायचन्द्रभाई मेहता पेशे से जवाहर का व्यवसाय करते थे पर जैन तत्त्व-ज्ञान के श्रेष्ठ ज्ञाता एवं प्रचारक थे। वे एक आशु कवि भी थे। भारत के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गाँधी ने उनसे अहिंसा-धर्म का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था तथा वे उनसे बहुत प्रभावित थे। महात्मा गाँधी ने स्वयं अपनी "आत्म-कथा" में लिखा है - "श्रीरायचन्द्रभाई से जब मेरा संपर्क हुआ तब वे मात्र २५ वर्ष के थे लेकिन पहली बार मिलने पर ही मुझे विश्वास हो गया कि वे ज्ञान के धनी और उच्च चरित्रशील व्यक्ति हैं। वे एक श्रेष्ठ कवि व शतावधानी थे और मैंने उनकी अद्भुत स्मरण शक्ति के अनेक चमत्कार देखे, लेकिन उनके काफी संपर्क में आने के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि उनका शास्त्रों का ज्ञान भी बहुत विपुल एवं विलक्षण था और उनमें आत्म-ज्ञान को प्राप्त करने की अदभुत लगन थी। मैं उस समय बैरिस्टर बनकर लौटा था लेकिन जब भी मैं उनसे मिलता वे मुझे धर्म की गहन चर्चा में निमग्न कर देते। मैं अनेक धर्मों के महापुरुषों के संपर्क में आया लेकिन मैं स्पष्ट कह सकता हूं कि मैं किसी से भी उतना प्रभावित नहीं हुआ जितना रायचन्द्रभाई से हुआ हूं। उनके शब्द सीधे मेरे हृदय को छूते थे। वे मेरे मददगार और मार्गदर्शक बने[1]।"

ग्रन्थ रचना का हेतु -

श्रीमद् रायचन्द्रभाई मेहता के ग्रन्थ पर श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने "शुक्ल-प्रवचन" नामक जो वृहद् भाष्य लिखा उसके पीछे एक विशेष कारण था – वर्तमान समाज में व्याप्त एक भ्रान्ति व अज्ञान का निवारण। जिस महापुरुष ने वीतराग धर्म का सुन्दर विवेचन किया, उसी के उपासक उनकी आज्ञाओं के विपरीत आचरण करने लगे। श्रीरायचन्द्र के उपासक उन्हें एक स्वतंत्र धर्मगुरु या धर्म के प्रतिष्ठापक के रूप में मानने लगे। श्रीमद् ने सभी धर्म क्रियाओं का समर्थन किया बशर्ते कि वे शास्त्रानुकूल हो व विवेक से की जाये तथा आत्म-ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो। उन्होंने सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय एवं तप की उपयोगिता को स्वीकार किया था लेकिन उन्हीं के भक्तजनों को आज ये मान्य नहीं हैं। श्रीमद् ने स्वतंत्र रूप से किसी पंथ या गच्छ की स्थापना नहीं की किन्तु आज उनके अनुयायियों ने उनका अलग गच्छ बना दिया है और उसे तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत मत से अलग प्रचारित कर रहे हैं। श्रीमद् के सारे उपदेश वीतराग वाणी पर आधारित थे और उन्होंने सबको जिनसूत्रों को पढ़ने की प्रेरणा दी।

पूज्य श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने श्रीमद् के सभी ग्रन्थों को पढा, सन् १६७४ से १६६१ तक (१७ वर्षों

१. आत्म-कथा या सत्य के साथ मेरे प्रयोग – महात्मा गाँधी, पृष्ठ ७४, ७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक) वे निरन्तर "आत्म-सिद्धि-शास्त्र" पर प्रवचन देते रहे और फिर उन्हें महसूस हुआ कि श्रीमद् के उपदेशों को उनके भक्तजन जिस प्रकार से प्रचारित कर रहे हैं वह उचित नहीं है। श्रीमद् ने स्वयं सर्वप्रथम "प्रतिक्रमण सूत्र" से ही जिनधर्म-विज्ञान को ग्रहण किया था अतः उनके अनुयायियों के भ्रम व अज्ञान का निराकरण अत्यावश्यक समझकर इस ग्रन्थ की रचना की गई। श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने आगम व आगम-बाह्य ग्रंथों के संदर्भ देकर यह स्पष्ट किया कि श्रीमद् के ग्रंथों में जो भी उपदेश प्रतिपादित है वे आगम-सम्मत हैं और आगम ग्रंथ ही उनके ज्ञान का मूल स्रोत हैं। "आत्म-सिद्धि" तो वस्तुतः **"अत्थि जिओ तह निच्चा"** गाथा पर ही आधारित है।[1] इस प्रकार यह ग्रंथ श्री सुमन मुनि जी की वर्षों की साधना, गंभीर अध्ययन व चिंतन का परिणाम है।

ग्रंथ का नामकरण -

पूज्य श्रीसुमनमुनिजी महाराज के दादागुरु थे पंडितरत्न प्रवर्त्तक श्रीशुक्लचन्द्रजी महाराज। जैन संघ के प्रभावक श्रमणों में आपका नाम बड़े आदर से लिया जाता है। नाम और गुणों के अनुसार वे "शुक्ल" थे तथा उनके तपस्वी जीवन से आपने साधना के सूत्र सीखे। उनके प्रति अपनी कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धा भावना व्यक्त करने के लिए आपने इस ग्रंथ का नाम "शुक्ल-प्रवचन" रखा, अन्यथा इस के प्रकाशक इस ग्रंथ का नाम "सुमन-प्रवचन" भी रख सकते थे। यह ग्रंथ लेखक की प्रसिद्धि-पराङ्मुखता व विनम्रता का भी द्योतक है। ये गुण आज के प्रचार-प्रसार के युग में विरल हो रहे हैं।

आवरण पृष्ठ -

पुस्तक के मुखपृष्ठ पर चार रंगों का सुन्दर कवर है, जो पुस्तक की विषय-वस्तु को मूर्त्त रूप प्रदान करता है। मुख-पृष्ठ पर तीन गोले हैं – काला, लाल और सफेद। काला रंग बहिरात्मा का प्रतीक है, जब मनुष्य इन्द्रियों के विषय व कषायों में आसक्त रहता हुआ शरीर को ही सर्वस्व मान लेता है तथा अज्ञानपूर्वक जीवन बिताता है। लाल रंग जीव की शुद्धात्मा का प्रतीक है, जब वह शरीर के प्रति आसक्ति को त्यागकर अन्तर्ज्योति के दर्शन करता है, आत्मज्ञान की अनुभूति करता है और श्वेत रंग जीवन यात्रा में जीव की उत्कृष्ट प्रगति का द्योतक है जब वह सभी आसक्तियों एवं विभावों से परे परमात्मा के दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार करता है। गोलों के ऊपर विकसित कमल का पुष्प है जो दर्शाता है कि व्यक्ति इस संसार में रहकर भी आसक्तियों के दलदल में बिना फंसे जलकमलवत् जीवन व्यतीत कर सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

ग्रन्थ का मूल भाव --

"आत्म-सिद्धि शास्त्र" का मूल दोहा निम्न है-

"आत्मा छे ते नित्य छे, छे कर्त्ता निज कर्म।
छे भोक्ता वली मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुधर्म।।"

अर्थात् आत्मा है वह नित्य है, वह कर्म का कर्त्ता - भोक्ता है, मोक्ष है और उसकी प्राप्ति का मार्ग भी है। इस दोहे का मूल आधार प्रवचनसारोद्धार ग्रंथ की निम्न गाथा ६४१ है:-

"अत्थि जिओ तह निच्चा, कत्ता भोत्ता य पुण्ण पावाणं।
अत्थि धुवं निव्वाणं, तदुवाओ अत्थि छट्ठाणेणं।।"

इसी के आधार पर इस ग्रंथ में बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा के स्वरूप की सुन्दर व्याख्या की गई है। आपने प्रवाहमयी भाषा में इस गंभीर विषय का जो

१. शुक्ल-प्रवचन भाग - २ "मेरी बात" पृष्ठ १ से ३ तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त हृदयग्राही है तथा इस गूढ़ विषय की सभी गुत्थियों को सरलता से सुलझाने वाला है। आत्मा के सही स्वरूप को नहीं समझने के कारण ही जीव इस संसार में भटक रहा है। श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने इस ग्रंथ में आत्मा, परमात्मा, कर्म, कषाय, धर्म इत्यादि सभी विषयों का सांगोपांग विवेचन किया है। यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं कि यह ग्रंथ आत्मज्ञान की एक मार्गदर्शिका (गाइड) बन गया है।

विषय का विश्लेषण -

जैसा कि ऊपर कहा गया, श्रीमद् रचित "आत्म-सिद्धि शास्त्र" में १४२ दोहे हैं। पूज्य श्रीसुमनमुनिजी ने इनका विस्तृत विश्लेषण चार भागों में १०३७ पृष्ठों में किया है अर्थात् एक-एक दोहे की व्याख्या ८-६ पृष्ठों में की है। आपने जैन आगम व व्याख्या ग्रंथों के ही नहीं बल्कि अन्य वैदिक ग्रंथों के भी सारे संदर्भ प्रस्तुत करके विषय को अत्यन्त स्पष्टता से प्रस्तुत किया है। आपने इसमें विश्वविद्यालयीय शोध-पत्रों की तरह सभी संदर्भ दिये हैं अतः शोध कार्य के लिए भी इस ग्रंथ का महत्त्व है। साथ ही सुन्दर बोधकथाएँ, प्रसंग व प्रश्नोत्तर द्वारा विषय को रोचक बना दिया है।

"आत्म-सिद्धि शास्त्र" के विवेचन के द्वारा पूज्य श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने न केवल श्रीमद् के अनुयायियों में व्याप्त भ्रान्ति का सौम्यता से निवारण किया है किन्तु आत्म-प्रधान जैन धर्म के तत्त्वज्ञान का भी इतना सुन्दर विवेचन किया है कि जो एक सामान्य जिज्ञासु के भी सरलता से समझ में आ सकता है। संक्षेप में यह महान् ग्रंथ आत्मा के दिव्य ज्ञान की एक श्रेष्ठ कृति है जिसका पारायण प्रत्येक जिज्ञासु को निरन्तर करना चाहिए, न केवल जैन धर्म किन्तु भारत की आत्म-प्रधान संस्कृति का यह एक सुन्दर गुलदस्ता है।

✤ ✤ ✤

श्रावक कर्त्तव्य

जैनधर्म में श्रावक (गार्हस्थ) के जीवन को बहुत महत्व दिया गया। भगवान् महावीर ने जिस चतुर्विध धर्मतीर्थ की स्थापना की थी उसके चार अंग थे - श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका। प्राचीन काल में जैन श्रावकों का जीवन साधनामय था, उन्हें जैन सिद्धांतों में पूर्ण आस्था थी। उन्होंने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में गरिमामय स्थान प्राप्त किया था। तीर्थंकरों एवं श्रमणों द्वारा प्रचारित नीति और अध्यात्म के सिद्धांतों में उनकी अविचल आस्था थी। इसलिए उनके जीवन में सत्यवादिता, कर्मण्यता, उदारता व दयालुता आदि सद्गुण व्याप्त थे। समाज द्वारा उन्हें सेठ (श्रेष्ठ), महाजन तथा साहुकार के गौरवास्पद संबोधन से पुकारा जाता था तथा वे समाज के हर वर्ग में लोकप्रिय थे। किन्तु आज हम उन जीवनमूल्यों और सिद्धांतों को विस्मरण कर रहे हैं। इस प्रकार के समय में श्री सुमनमुनिजी म. द्वारा रचित **"श्रावक-कर्तव्य"** ग्रंथ का सम-सामयिक महत्व है। आपने इस ग्रंथ में श्रावक जीवन से संबंधित सभी शास्त्रों एवं ग्रंथों को पढ़ कर उनका निचोड़ प्रस्तुत कर दिया है। "श्रावक कर्तव्य" ग्रंथ का प्रथम संस्करण सन् १६६४ में जयपुर से प्रकाशित हुआ। उस समय इस विषय पर बहुत कम सामग्री उपलब्ध थी। इसका द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण चेन्नई से सन् १६६५ में, तृतीय संस्करण पुनः १६६६ सन् में प्रकाशित हुआ। स्वाध्यायियों एवं जिज्ञासुओं के लिए यह अनुपम ग्रंथ है।

ग्रंथ रचना का हेतु -

"श्रावक-कर्तव्य" ग्रंथ की रचना का एक विशिष्ट हेतु है। आज के सामाजिक वातावरण में शिथिलाचार व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्रष्टाचार का नारा लगाकर कई व्यक्ति अपने मन के उन विचारों को पूर्ण करने का अवसर बना लेते हैं जो व्यक्तिगत या दलगत स्वार्थ, वैमनस्य व प्रतिष्ठा की प्राप्ति के रूप है। कई श्रमणों व कई श्रावकों की लेखनी अपनी मर्यादित सीमा को पार कर जाती है। शिथिलाचार किसे कहते हैं? उसकी मूल स्थिति कैसी होती है? इस प्रकार के ज्ञान के अभाव में कभी व्यक्ति एक परंपरा, रीति जो पहले नहीं थी और आज बन गई है और उसमें मूल गुण व साधना को कोई आँच नहीं हैं फिर भी उसे शिथिल आचार की कोटि में रख दिया जाता है। आगम में श्रावक को साधु के लिए जो वृति से च्युत हो रहा है पुनः आरूढ करने की शिक्षा देने का अधिकार तो दिया है पर वह माता-पिता की भाँति है, सौत की तरह नहीं। आज कतिपय श्रावक साधुओं से इस तरह का व्यवहार करते हैं जैसे सौतें अपने विपुत्रों से करती हैं। इसका कारण है कि श्रावक को अपने स्वयं के स्वरूप का व कर्तव्यों का ज्ञान नहीं है अतः श्री सुमनमुनिजी म. ने निश्चय किया कि हिन्दी भाषा में श्रावक जीवन का परिपूर्ण ज्ञान कराने वाली एक पुस्तक प्रकाशित होनी चाहिए। उसी की पूर्ति के हेतु इस ग्रंथ की रचना की गई।

ग्रंथ का मूल आधार -

सन् १९६४ में जिस समय इस ग्रंथ की रचना हुई, श्रावक जीवन से संबंधित सामग्री सहजता से प्राप्त नहीं थी। दैवयोग से रायकोट (लुधियाना) चार्तुमास के समय वहाँ के स्थानक में रखे हुए हस्तलिखित शास्त्र "चउपि-स्तवनादि" के संग्रह में कुछ सामग्री "श्रावक-सज्झाय" के नाम से मिली, जिसमें श्रावक के हेय-ज्ञेय-उपादेय रूप सब सामग्री पद्य रूप में थी। यह सामग्री ही इस ग्रंथ का मूल आधार है।

जैन परंपरा में श्रावक को परिभाषित करते हुए कहा गया कि जो सम्यग्दृष्टि व्यक्ति यतिजनों, श्रमणों से समाचारी "आचार विषयक उपदेश" श्रवण करता है, उसे श्रावक कहते हैं[1]। शास्त्रों में इसके जीवन की महत्ता तथा इसके कर्तव्यों पर व्यापक सामग्री मिलती है।

भारतीय संस्कृति में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया है। हमारे चतुर्विध पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में धर्म का प्रथम स्थान है। श्रावक का जीवन सदैव धर्म से अनुप्रेरित रहना चाहिए। उसकी पारिवारिक, आर्थिक व सामाजिक आदि सभी क्रियाएँ धर्म से नियंत्रित होनी चाहिए। इसलिए यहाँ पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया। वह मात्र काम-वासना की पूर्ति का साधन नहीं है, जीवन को कल्याणमय धर्म की ओर अग्रसर करने में सहायता प्रदान करने वाली है। शास्त्रों में कहा है – "धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को भले ही अन्य कोई परस्पर विरोधी मानते हों किन्तु जिनवाणी के अनुसार यदि वे कुशल अनुष्ठान में अवतीर्ण हो तो परस्पर असपत्न (अविरोधी) है[2]।

श्रावक से अपेक्षा की जाती है कि वह पाँच अणुव्रतों का पालन करें। हिंसा, चोरी, अब्रह्मचर्य (पर-स्त्री संसर्ग) व अपरिमित कामना (परिग्रह) से सापवाद - अपने सामर्थ्य के अनुसार विरत होना अणुव्रत है। इसी प्रकार उससे अपेक्षा की जाती है कि वह निम्न तीन गुण व्रतों का पालन करे –

दिशापरिमाण व्रत – छह दिशाओं में गमन की मर्यादा तथा उपरांत आश्रव का त्याग करना दिशा परिमाण है।

उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत – उपभोग वे पदार्थ हैं जो जीवन में बार-बार काम आते है जैसे – वस्त्र, भवन, शय्या आदि। परिभोग वे पदार्थ हैं – जो एक बार काम

१. सावयपण्णति सूत्र संख्या - २
२. दशवैकालिक निर्युक्त सूत्र संख्या - २६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आते हैं जैसे – भोजनादि पदार्थ। इनको मर्यादित करना उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत है।

अनर्थदंड विरमण व्रत – अर्थ प्रयोजन के लिए गृहस्थ को हिंसा करनी पड़ती है किन्तु कई व्यक्ति व्यर्थ ही मन, वचन एवं काय योग से हिंसा करते हैं जैसे कि मन में चिंता, दुःसंकल्प करते रहना, प्रमाद करना, हिंसाकारी शस्त्रों का बिना प्रयोजन संग्रह करना, अन्य को पाप करने का उपदेश देना आदि। इस प्रकार के पाप कर्मों से विरत रहना अनर्थदंड विरमण व्रत है।

इसी प्रकार एक सुश्रावक को चार शिक्षा व्रतों का भी पालन करना चाहिए। वे निम्न है –

देशावकाशिक व्रत – दिशाओं की ग्रहण की हुई मर्यादा का पालन करना।

पौषधोपवास - आठ प्रहर के लिए आहार एवं सावद्य क्रिया का त्याग कर एकांत में धर्मध्यान में लीन रहना।

अतिथि संविभाग व्रत – साधु व साध्वी को उनकी वृत्त्यानुसार चौदह प्रकार का दान निष्काम वृत्ति से देना। श्रावक व अनुकम्पा दृष्टि से अन्य को देना भी इसके अंतर्गत आता है।

श्रावक सम्यग्दृष्टि होता है इसलिए वह संवेग, निर्वेद आदि का अभ्यास करता है। वह विषयाभिलाषी नहीं होता। जल में कमल की भांति अनासक्त रहता है। कहा भी है:-

"सम्यक् दृष्टि जीवड़ा करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे ज्यूं धाय खिलावे बाल।।"

मार्गानुसारी के पैंतीस गुण श्रावक के कर्तव्यों का ज्ञान प्रदान करते हैं। मार्गानुसारी का अर्थ है जो तीर्थंकरों द्वारा उद्भाषित मार्ग का अनुकरण करता ह, उन पर आगे बढ़ता है। वे सभी गुण मनुष्य को उत्कर्ष की ओर ले जाने वाले है। उनमें से कुछ गुण निम्न हैः-

१. **न्याय सम्पन्न विभव** – श्रावक को न्यायपूर्वक अपनी आजीविका करनी चाहिए।

२. **मातृ-पितृ सेवा** – माता-पिता एवं वृद्ध जनों की सेवा करनी चाहिए।

३. **आयानुसार व्यय** – गृहस्थ को अपनी आय के अनुसार ही व्यय करना चाहिए।

४. **यथा समय भोजन** – श्रावक अपनी प्रकृति के अनुकूल भोजन उचित समय पर करें।

५. **अबाधित त्रिवर्ग साधना** – धर्म, अर्थ और काम - इन तीनों का मर्यादित उपभोग त्रिवर्ग साधना कहलाती है। गृहस्थ धर्म-क्रिया में प्रमाद नहीं करे, अर्थार्जन भी उसके लिए आवश्यक है अतः अर्थ और काम का सेवन मर्यादापूर्वक, विवेकपूर्वक करें।

६. **अतिथि सत्कार** – घर में आये साधु, दीन-दुःखी तथा सहायता इच्छुक का यथाशक्ति आदर करना चाहिए।

७. **गुणपक्षपात** – श्रावक गुणग्राही हो। वह सज्जनता, उदारता, परोपकार, करुणा, सरलता, मैत्री आदि गुणों को ग्रहण करें।

८. **बलाबल विचार** – श्रावक जो भी कार्य करे अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार करे, नहीं तो कार्य में सफलता नहीं मिलेगी एवं समय का अपव्यय होगा, जीवन में निराशा आयेगी।

९. **पोष्य-पोषक कर्म** – श्रावक जिनका भरण-पोषण, पालन, रक्षा का भार उसके ऊपर है। यथा माता - पिता, स्त्री, संतति, सगे-संबंधी, आश्रित कर्मचारी आदि की सुरक्षा व सुविधा का पूरा सदैव ध्यान रखे तथा उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. **दीर्घ दृष्टि** – गृहस्थ लम्बी सूझ रखें। इससे उसका जीवन उलझन से बच जाता है।

११. **विशेषज्ञ** – गृहस्थ कार्य-अकार्य, करणीय-अकरणीय, स्व-पर आदि की निपुणता रखें।

इस प्रकार के कुल ३५ उत्तम गुणों का वर्णन **धर्म बिन्दु** ग्रंथ मे बतलाया गया है। आज के युग में इन गुणों का पालन करना कितना आवश्यक है यह हम सब समझ सकते हैं।

चार विभाग -

प्रस्तुत पुस्तक में चार विभाग है – श्रावक-स्वरूप, श्रावक द्वारा परिहार्य, श्रावक द्वारा स्वीकार्य व श्रावक द्वारा चिंतनीय, इन चारों विभागों में ३५ परिच्छेद हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में श्रावक शब्द के बारे में सूत्रों के बड़े सुन्दर उद्धरण दिए गये हैं जिससे उसके कर्तव्यों का समुचित ज्ञान होता है। यथा –

१. "जो संयत मनुष्य गृहस्थ में रहता हुआ भी समस्त प्राणियों पर समभाव रखता है, वह सुव्रती देवलोक को प्राप्त करता है।

२. जो व्यक्ति जीव-अजीव के ज्ञाता होते हैं, पुण्य व पाप को समझते हैं, वे तत्वज्ञानी श्रावक देव, असुर, नाग आदि देवगणों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखते तथा इनके द्वारा दबाव डाले जाने पर भी निर्ग्रन्थ प्रवचन का उल्लंघन नहीं करते।

३. किसी के पूछने पर वे श्रावक कहते हैं, "आयुष्मान्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सार्थक है, सत्य है, परमार्थ है, शेष सब अनर्थक है।" (श्रावक-कर्तव्य पृष्ठ १७-१८)

इस ग्रंथ का परिशिष्ट बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसमें **प्राकृत विभाग** में सामायिक, पच्चखाण, दया, पौषध व संवर के सूत्र दिये हैं। हिन्दी के **पद्य विभाग** में श्रावक सज्झाय, स्वरूप चिन्तन, अमूल्य तत्व-विचार, मेरी भावना व बारह भावना दी है तथा गद्य विभाग में छब्बीस बोल, संथारा अतिचार आदि, आठ दर्शनाचार आदि दिया है।

इस प्रकार श्रावक जीवन के बारे में सभी प्रकार की उत्तम सामग्री एक ही ग्रन्थ में मिल जाती है।

विद्वान् लेखक ने इस ग्रन्थ में मार्गानुसारी के ३५ गुण, श्रावक के २१ गुण, श्रावक की विशिष्ट साधना के २१ नियम, अमूल्य तत्व विचार, बारह भावना, चौदह नियम, छब्बीस बोल, श्रावक की दिनचर्या, भाषा - विवेक, १५ कर्मादान, १८ पाप इत्यादि का विस्तृत विवेचन किया है। इसके साथ ही श्रावक जीवन से संबंधित मंगल-सूत्र व सामायिक सूत्र के मूल पाठ तथा उनकी व्याख्याएं भी दी है।

जैन जीवन-दर्शन में व्यसन-मुक्त जीवनाराधना पर बहुत जोर दिया गया है। श्रावक के लिए यह आवश्यक है कि वह सात व्यसनों से दूर रहे। वे सप्त दुर्व्यसन हैं - जुआ, मांस-भक्षण, वेश्यागमन, मद्यपान, शिकार, चोरी और पर-स्त्री गमन। आज अपने समाज में भी ये दुर्व्यसन फैल रहे हैं। इस पुस्तक में इन दुर्व्यसनों से होने वाली हानियों पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

गृहस्थी में रहते हुए भी जैन गृहस्थ का जीवन साधना, ज्ञान तथा आचार से युक्त होना चाहिये। वह अपने जीवन के लक्ष्य को नहीं भूले। नियमों व व्रतों का पालन करते हुए, कषाय व प्रमाद को शनैः शनैः कम करता हुआ वह जीवन को उत्कर्ष की ओर अग्रसर करे, यही श्रावक जीवन का उद्देश्य है। श्रावक सरल स्वभावी हो, गुणज्ञ हो, सिद्धांत-निपुण हो और शील सम्पन्न हो।

"श्रावक-कर्तव्य" ग्रंथ को हम संक्षेप में "श्रावक जीवन की मार्गदर्शिका" कह सकते हैं, जिसमें श्रावक जीवन से संबंधित सम्पूर्ण सामग्री विस्तार से लगभग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०० पृष्ठों में प्रस्तुत की गई है। लेखक की भाषा सरल, सहज, बोधगम्य तथा प्रवाहमय है। यह ग्रन्थ प्रत्येक जिज्ञासु, विद्यार्थी तथा स्वाध्यायी के लिए पठनीय तथा मननीय है।

पंडितरत्न श्री सुमनमुनिजी म. अनेक भाषाओं के असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् हैं तथा इन भाषाओं के व्याकरण का उन्हें पूर्ण ज्ञान है। वे एक महान् शब्द-शिल्पी हैं तथा गंभीरतम विषय का सरलता से विश्लेषण करने की अद्भुत सामर्थ्य रखते हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ में जैन तत्वज्ञान के सभी सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन किया है जो एक सामान्य जिज्ञासु को भी सरलता से समझ में आ सकता है।

संक्षेप में यह महान् ग्रन्थ आत्मा के दिव्य ज्ञान की एक श्रेष्ठ कृति है जिसका पारायण प्रत्येक जिज्ञासु को प्रतिदिन करना चाहिए। मैं पूज्य श्री सुमनमुनिजी म. को इस उत्तम श्रमपूर्ण ग्रन्थ की रचना करने के लिए बधाई देता हूँ तथा इस मनीषी श्रमण साहित्यकार की अभ्यर्थना करता हूँ।

✤ ✤ ✤

वृहदालोयणा (ज्ञान गुटका)

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १९६५ में अलवर में प्रकाशित हुआ और द्वितीय संशोधित संस्करण बैंगलोर में सन् १९९२ एवं तृतीय संस्करण सन् १९९६ में मैसूर में प्रकाशित हुआ।

"वृहदालोयणा" ग्रंथ स्थानकवासी जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय है। पंडितरत्न श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने इसी कृति का सुन्दर अनुवाद व विस्तृत विवेचन १६३ पृष्ठों में प्रस्तुत किया है।

मूल रचयिता –

इसकी मूल कृति के रचयिता लाला रणजीतसिंहजी थे जो दिल्ली में रहते थे। वे एक ज्ञानवान् श्रावक थे तथा जवाहरात का व्यापार करते थे। इनको आगम का विस्तृत ज्ञान था। यह कृति पूर्णतः इनकी मौलिक रचना नहीं है क्योंकि इसमें कबीर, तुलसी, रज्जब व नानक आदि के दोहों का भी संग्रह है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि संग्रह का चयन बड़ी सूक्ष्मता व गंभीरता से किया गया है। भौतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन व्यवहार को तोल कर रखा गया है। इसमें जीवन को छूने वाले प्रत्येक स्वीकार्य, परिहार्य, चिन्तनीय व व्यवहार की बातों का सम्यक् विवेचन उपलब्ध है। गंभीर तत्त्व ज्ञान की बातों को इस पुस्तक में सरलता के साथ प्रतिपादित किया गया है। इसकी भाषा सहज व इसका चयन शिक्षाप्रद है। इसी कारण से यह स्वाध्यायियों में अत्यधिक लोकप्रिय है। मूल ग्रंथ की रचना वि.सं. १९३९ में हुई।

आलोचना का महत्त्व –

साधक के लिए प्रतिक्षण जागृत रहना आवश्यक है। उसे अपनी प्रत्येक क्रिया प्रमाद रहित होकर करनी चाहिए तथा निरंतर अपनी भूलों का प्रायश्चित करते रहना चाहिए। आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने का यही मार्ग है। आलोयणा या आलोचना की परंपरा जैन समाज में नियमित रूप से प्रचलित है। हजारों भाई-बहन इस कृति का पूर्ण या आंशिक पाठ करके अपने जीवन से दुर्गुणों को दूर कर सद्गुणों का संचार करते हैं। विशेषतः इस रचना का पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं पर्यूषण पर्व के सांवत्सरिक अवसर पर पाठ समस्त संघजनों के समक्ष अवश्य किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना का परिचय –

इस रचना के दो रूप प्राप्त होते हैं – एक पद्य-गद्य रूप एवं दूसरा केवल पद्य रूप। पहले को **"वृहदालोयणा"** और दूसरे को **"ज्ञान-गुटका"** कहते हैं। पद्य विभाग में मंगलाचरण, आत्म-कल्याण भावना, कर्म का स्वरूप, संसार स्वभाव, आत्म-उद्‌बोधन, पुण्य-पाप, शील आदि विभिन्न विषयों के माध्यम से आत्म-आलोचना की गई है। गद्य विभाग में अठारह प्रकार के पाप की विस्तार पूर्वक तथा शेष अतिचार आदि दोषों की संक्षेप में आलोचना है। पद्य विभाग में सुन्दर दोहे, सवैये, गाथा तथा हरिगीतिका के छंद है जो सुमधुर एवं लालित्यपूर्ण हैं।

पूज्य श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने इस श्रेष्ठ कृति का बहुत ही सुन्दर अनुवाद तथा विवेचन किया है। प्रत्येक पाठ का विश्लेषण, आगम के साथ उसकी संगति, संदर्भ आदि दिए हैं। भाषा सहज, सरल एवं प्रभावशाली है। इस ग्रंथ का परिशिष्ट बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें लेखक ने संबंधित तात्त्विक विषयों का यथा – तीस महामोहनीय स्थान, आठ कर्मों के बंध के कारण, पौषध के १८ दोष, २५ मिथ्यात्व, पाप की ८२ प्रकृतियाँ, ध्यान के १६ दोष, सामायिक के ३२ दोष, वंदना के ३२ दोष, शील की ६ बाड़, आठ प्रवचनमाता, पच्चीस क्रिया व छह लेश्या का विशद वृतांत दिया है अतः यह ग्रंथ साधकों, स्वाध्यायियों के लिए अत्यधिक प्रेरक एवं लाभप्रद बन गया है।

✤✤✤

देवाधिदेव रचना

इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण सन् १९६४ में अम्बाला शहर में प्रकाशित हुआ था। भक्तों की निरंतर मांग पर इसका द्वितीय संस्करण चेन्नई में सन् १९९७ में प्रकाशित हुआ।

"देवाधिदेव रचना" मूल ग्रंथ का निर्माण आज से १९० वर्ष पूर्व पंजाब के श्रेष्ठ हिन्दी लोककवि श्रीहरजसराय ने किया था। पंजाब के स्थानीय जैन समाज में इस पुस्तक को बहुत लोकप्रियता मिली थी तथा अनेक व्यक्ति प्रातःकाल इसका पाठ करते थे। जो प्रसिद्धि गीता, धम्मपद और सुखमणि साहब को प्राप्त थी वैसी ही इसे भी प्राप्त थी। तीर्थंकरों के चरित्र एवं गुणों को दर्शानि वाली यह एक अनुपम कृति थी। इस प्राचीन कृति का सुन्दर अनुवाद व व्याख्या करके श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने पुरातन लोकप्रिय साहित्य को प्रकाश में लाने का अभिनंदनीय एवं स्तुत्य कार्य किया है।

मूल प्रति की खोज –

श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने इस ग्रंथ की मूल प्रतियों को खोजना प्रारंभ किया। उन्हें तीन हस्तलिखित व तीन मुद्रित प्रतियाँ प्राप्त हुईं। इन प्रतियों के आधार पर लेखक ने इस ग्रंथ का सरल भाषा में भावानुवाद दिया है। साथ ही प्रत्येक पद की विस्तृत व्याख्या भी दी है एवं जैन धर्म के गंभीर सिद्धांतों को सरल भाषा में अभिव्यक्त किया है। इसके साथ ही उत्थानिका, टिप्पणी, संगति आदि द्वारा विषय को इतना स्पष्ट किया है कि वह सरलता से समझ में आ जाये।

मूल ग्रंथ के रचयिता –

लाला हरजसराय जैन सुश्रावक थे तथा कुशपुर (लाहौर के निकट) के रहने वाले थे। इनको जैन तत्त्वज्ञान का अद्‌भुत ज्ञान था तथा इन्होंने तीन सुप्रसिद्ध काव्य ग्रंथों की रचना की, जिनके नाम **साधु-गुणमाला,**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव-रचना, व देवाधिदेव रचना है। गेय होने के कारण ये तीनों ग्रंथ बहुत ही लोकप्रिय हुए। ये एक श्रेष्ठ कवि, संगीत के ज्ञाता, कुशल लिपिक व विद्वान् पुरुष थे। कहते हैं कि ये आचार्य श्री नागरमलजी (पंजाब) के श्रावक थे।

सर्वज्ञ, वीतराग व अर्हत् को देवाधिदेव कहा जाता है। "देवाधिदेव रचना" एक छोटा सा ग्रंथ है जिसमें मात्र ८५ पद हैं। इसको इतनी प्रसिद्धि मिलने का कारण है कि यह लोक भाषा में लिखी हुई सरल रचना है। यह एक सुमधुर रचना है तथा इसकी भाषा प्रवहमान है। इसमें अनेक दोहे, सवैये व अन्य छंदों तथा अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का उपयोग करके कवि ने इसे बहुत सरस बना दिया है। इसकी वर्णन शैली व भाव भी रोचक है। उनमें रूक्षता नहीं है, सर्वत्र कोमल कांत पदावली का प्रयोग हुआ है। भाषा संस्कृत-प्राकृतनिष्ठ हिन्दी है पर उस पर राजस्थानी व पंजाबी का भी प्रभाव है। उनके काव्य में स्वाभाविकता, कोमलता व मधुरता का नमूना देखें –

"धर्म कथा अति सुन्दर, श्रीजिनराय कही सब ही सुख पाया,
के नर-नार लिए -ऋष चारित, के अणुव्रत लई मग आया।
के समदृष्टि तथा तिरजंच, सुश्रावक के समदिष्ट सुहाया,
देव भये भगता अतिमोदत, सब ही भव्य नमी गुण गाया।।४८।।

इस ग्रंथ को मूलतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है – मंगलाचरण, देवाधिदेव-स्तुति व समवसरण। इसमें तीर्थंकरों के चरित्र की विशेषताओं, उनके चरित्र के गुण, समवसरण रचना, उनके उपदेश, उनकी वाणी का प्रभाव इत्यादि सभी विषयों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इसकी सामग्री कवि ने अंग-उपांग आगमों, आगम-बाह्य ग्रंथों तथा स्थानांग, समवायांग, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, औपपातिक, राजप्रश्नीय, प्रवचनसारोद्धार आदि ग्रंथों से ली है।

पूज्य श्री सुमनमुनि जी ने इस ग्रंथ का विस्तृत व परिपूर्ण विवेचन किया है। संबंधित ग्रंथों के उद्धरण व संदर्भ आदि देने से यह पुस्तक शोधार्थियों के लिए भी लाभप्रद बन गई है। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट बहुत लाभदायक है। इसमें आपने पारिभाषिक शब्द-कोष दिया है जिसमें कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया है। इसके साथ ही शास्त्रों में वर्णित तीर्थंकरों के चौतीस अतिशय तथा उनकी वाणी की पैंतीस विशेषताओं का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त मूलग्रंथ में उद्धृत तेरह महापुरुषों के जीवन के रोचक वृतांत भी प्रस्तुत किये हैं, जो प्रेरणादायक हैं।

आकर्षक मुखपृष्ठ –

ग्रंथ का मुखपृष्ठ भी बहुत सुन्दर है जो ग्रंथ रचना के मूल नाम को प्रदर्शित करता है। चार रंगों के इस आकर्षक मुखपृष्ठ में एक प्रकाश-स्तम्भ को चित्रित किया गया है, जिसमें से निकलकर तेज प्रकाश चारों दिशाओं में फैल रहा है। प्रकाश-स्तम्भ के नीचे समुद्र है, जिसमें से लहरें ऊपर उठ रही हैं, समुद्र में अनेक प्रकार के जीव-जन्तु, स्त्री-पुरुष, नावें, जहाजें आदि हैं, उनमें से कई इस प्रकाश-स्तम्भ की किरणों से आकर्षित होकर समुद्र के किनारे पहुँच जाते हैं। तीर्थंकरों का जीवन उस महा तेजस्वी प्रकाश-स्तम्भ की तरह होता है जिसमें से निरंतर दिव्य प्रकाश की लहरें निकलती रहती हैं तथा चारों दिशाओं में फैलती रहती है। संसार-समुद्र के भीषण आघातों, प्रत्याघातों से टक्कर खाते प्राणी जब तीर्थंकर भगवान् का उपदेश सुनते हैं तो उनका जीवन दिव्य प्रकाश को प्राप्त करता है और वे उन उपदेशों को आचरण में लाकर अपने जीवन को ऊँचा उठाते हैं तथा शुद्ध और मुक्त हो जाते हैं।

"देवाधिदेव-रचना" प्रतिदिन पाठ करने योग्य ग्रंथ है। तीर्थंकरों के प्रति हृदय में श्रद्धा जागृत करने वाली यह एक श्रेष्ठ एवं अनुपम कृति है।

✤ ✤ ✤

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनोखे तपस्वी

ऐतिहासिक रचना

यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसमें पंजाब प्रांत के तेजस्वी श्रमण-रत्न पूज्यवर श्री गैंडेराय जी महाराज का प्रेरक जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया गया है। ये आचार्य श्री सोहनलालजी महाराज के ज्येष्ठ शिष्य थे। आश्चर्य है कि महान् लेखक पूज्य श्री सुमनमुनि जी महाराज को उनके दर्शन करने का अवसर नहीं मिला परन्तु आपने उनके प्रेरणादायी जीवन के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था और आपके दादा गुरु श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज की इच्छा थी कि उनका जीवन चरित्र प्रकाश में आये तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। उनकी अभिलाषा की पूर्ति का प्रयत्न है – यह ग्रन्थ। इस ग्रन्थ की सामग्री संकलन हेतु अनेक महापुरुषों से श्री सुमनमुनिजी महाराज सा. ने प्रत्यक्षतः वार्तालाप किया। वार्तालाप के आधार पर जो संस्मरण उभरे एवं जो विम्ब - प्रतिविम्ब उनके जीवन के उजागर हुए, उन्हें ही मूल स्रोत बनाया गया है। मुख्य सामग्री इन महापुरुषों के मुख से उजागर हुई है :- पंडित प्रवर शुक्लचन्द्रजी महाराज, श्री कपूरचन्द्रजी म., श्री फूलचन्द्रजी म., श्री ब्रह्मऋषिजी म., अनेक महान् साध्वियां व श्रावक-श्राविकाएं जिन्हें उनके दर्शन, प्रवचन श्रवण करने, उनके साथ तत्त्व चर्चा करने एवं उनके जीवन को निकटता से देखने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ था।

महान् तपस्वी

श्री गैंडेरायजी महाराज में अनेक गुण थे लेकिन एक तपस्वी के रूप में वे अति विख्यात थे, अतः इस ग्रन्थ का नामकरण **'अनोखे तपस्वी'** किया गया है। ऐसे संत कम पाए जाते हैं, जिनमें ज्ञान और तपश्चरण दोनों गुण विद्यमान हो। श्री गैंडेरायजी में ये दोनों गुण प्रचुरता से मौजूद थे। इस ग्रन्थ में उनकी जीवनी को तेरह छोटे-छोटे परिच्छेदों में विभाजित किया गया है:-

शब्द-चित्र, जन्म, विराग, दीक्षा, गुरु-सेवा, तपस्वी, उपकारी संत, गुरुदेव, उदारचेता संत, आदर्श प्रचारक, महाप्रयाण, चार्तुमास-तालिका आदि। आपके सांसारिक भ्राता, जो आपकी प्रेरणा से आपकी दीक्षा के तेरह वर्षों बाद आपके शिष्य बने, श्री जमीतरायजी महाराज का संक्षिप्त परिचय भी इसी ग्रन्थ में दिया गया है। अंत में पूज्य प्रवर के सम्पर्क में आए हुए लोगों के १७ संस्मरण भी दिये गए हैं जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है।

आदर्श जीवन का चित्रांकन

इस पुस्तक के प्रारम्भ में सुयोग्य लेखक ने तपस्वी मुनिजी का बड़ा ही सुंदर शब्द-चित्र खींचा है। उनमें से कुछ पंक्तियां देखें:-

"लम्बा कद (दीर्घ अवगाहना), इकहरा शरीर, गौरवर्ण, अजानुबाहू (घुटनों तक लम्बीं भुजाएं), विशाल भाल, प्रकृताञ्जन नेत्र, तूलिका-सी उंगलियां, सीप-सी अंजली, विष्कम्भक वक्षस्थल, गम्भीर नाभि, मत्स्योदर, सीप-सी अंजली, खड़ाओं की भांति पाद-जिसमें बीच का भाग भूमि-स्पर्श नहीं करता था, शुक-नासिका, उदात्त एवं गम्भीर स्वर। बीस वर्ष की पूर्ण यौवनावस्था में संसार के सारे भौतिक सुखों का परित्याग करने वाले एक आदर्श त्यागी, उग्र संयमी और मार्गदर्शक महापुरुष! स्वभाव से स्पष्ट वक्ता, खरापन, सरल ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग, एकांतप्रिय, निर्भीक, तपः संयम में लीन रहनें की वृत्ति, स्व-कष्टसहिष्णु, स्व-पर दोष प्रक्षेपण असहिष्णु, गुरुभक्त, क्रियावादी, संयमी पुरुष, परम सेवी।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतने कम शब्दों में श्री सुमनमुनि जी ने तपस्वी महाश्रमण के मानो सम्पूर्ण जीवन का जीवंत चित्रांकन कर दिया है।

विरक्ति का भाव

एक छोटी सी घटना ने आपके हृदय में संसार से विरक्ति उत्पन्न कर दी। बचपन में पतंग उड़ाते समय एक चील उस पतंग की क्षुरधारा-सी डोर की लपेट में आ गई, उसका एक डैना-पंख उसी समय कट गया और वह लहुलुहान होकर गिर पड़ी, उसका जीवन क्षत-विक्षत हो गया। उसकी मृत्यु ने इनके करुणार्द्र हृदय में विरक्ति का भाव उत्पन्न किया और उस भावना ने चरम रूप लिया कलानौर में जब वे अकस्मात् ही पूज्यवर श्री सोहनलालजी महाराज का प्रवचन सुनने पहुंच गये। गुरुदेव की मेघ गर्जन-सी गम्भीर, कोयल-सी मधुर किन्तु योगी-सी ओजपूर्ण वाणी सुन कर वे मंत्र-मुग्ध हो गए और उनके एक प्रवचन ने ही उनके जीवन में क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया। उस समय उनकी उम्र मात्र २० वर्ष थी। उन्होंने वहीं पर दीक्षा का दृढ़ संकल्प ले लिया कि मैं अब घर वापिस नहीं जाऊंगा। जाति के वे थे कुम्हार/कुम्भकार/ प्रजापति पर जैन धर्म में तो जाति का कोई बंधन नहीं है। लोकप्रिय कवि श्री हरजसराय ने जैन धर्म की इस विशेषता को बताते हुए लिखा था –

> **"जाति को काम नहीं जिन मारग,**
> **संयम को प्रभु आदर दीनो।"**

वे पुनः अपने घर पर नहीं गये। गुरुदेव श्री सोहनलालजी महाराज ने ही उन्हें श्रमण-दीक्षा प्रदान की।

गुरु-सेवा की भावना

श्री तपस्वीजी अनेक गुणों से सम्पन्न थे। श्रमण जीवन अंगीकार करने के बाद उन्होंने अपना सारा समय गुरु-सेवा, ज्ञानाराधना, त्याग व तपस्या में बिताया। उन्हें वाग्सिद्धि प्राप्त हो गई थी और गुरु के प्रति तो उनमें इतना अधिक भक्ति-भाव था कि सन् १६१६ में जब उन्हें मालूम हुआ कि श्रद्धेय आचार्यश्री महाराज का स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया है तो वे तुरंत गुरुदेव की सेवा हेतु रवाना हो गए। उस समय सारे देश में अंग्रेजों द्वारा लागू रोलट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह चल रहा था तथा सरकार ने सर्वत्र मार्शल लॉ घोषित कर दिया था। उनके सभी साथी श्रमणों व भक्तों ने बहुत मना किया परंतु वे निर्भीक होकर चल पड़े तथा सभी आपदाओं को सहन करते हुए गुरुदेव के समीप पहुंच गये। गुरुदेव भी उन्हें उस परिस्थिति में पहुंचने पर आश्चर्यचकित रह गये।

तपस्वी जीवन

जैसा कि ऊपर इंगित किया जा चुका है कि श्री गैंडेरायजी महान् तपस्वी संत थे। लेखक ने उनके तप का भी बड़ा ही मार्मिक वर्णन इस ग्रन्थ में किया है। उसे संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है –

१. उन्होंने वृतिसंक्षेप, अवमौदर्य, उपधि आदि तप किया। उन्होंने १२ वर्षों तक शरीर पर मात्र एक चादर, एक चुल्लपट (तेड़ का वस्त्र) तथा अपने साथ में मात्र तीन पात्र ही रखे। वे एक ही पात्र में गोचरी में प्राप्त आहार सम्मिलित करके बिना किसी रसास्वादन के ग्रहण करते थे।

२. उनका भोजन सादा, नीरस व परिमित था। वे दूध, दही, घी व मिष्ठान्न पदार्थ नहीं लेते थे किन्तु मात्र पारणे के दिन दूध ले लेते थे।

३. पर्व तिथि में पाद विहार होने पर भी उपवास आदि तथा अनेक बार दो, तीन, चार, पाँच व आठ उपवास करते थे। आपने सर्वाधिक २१ उपवास व १०० आयम्बिल व्रत किये हैं। प्रति वर्ष संवत्सरी के बाद पाँच उपवास (पंचोला) किया करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. आभ्यन्तर तप जैसे ध्यान, स्वाध्याय तथा प्रवचन का आचरण प्रति दिन करते थे।

५. वे कठोर संयमी थे तथा धर्म-क्रिया में बहुत दृढ़ता रखते थे। वे अज्ञात कुल से गोचरी लेने का प्रयत्न करते थे। वे पूर्णतः साधु-मर्यादा के अनुकूल आहार उपलब्ध होने पर ही गोचरी ग्रहण करते थे।

उनके जीवन में बहुत तेजस्विता एवं ओजस्विता थी। उन्होंने हजारों लोगों को व्यसन-मुक्त किया तथा शाकाहारी बनाया। जैन तत्त्वज्ञान में वे निपुण थे तथा उनका प्रवचन इतना हृदयग्राही भाषा में होता था कि श्रोताओं कि सभी शंकाएं निर्मूल हो जाती थी।

ऐसे महान् श्रमण की मार्मिक घटनाओं को बड़ी ही सरल भाषा में इस ग्रन्थ में अभिव्यक्त किया गया है। १२५ पृष्ठों की यह पुस्तक वि संवत २०२६ में प्रकाशित हुई। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह पुस्तक अतीव रोचक एवं हृदयग्राही है।

✤ ✤ ✤

पंजाब श्रमणसंघ गौरव आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज

प्रभावी शब्द चित्रांकन

यह ग्रन्थ भी एक ऐतिहासिक रचना है। इसका प्रथम संस्करण सन् १६७० में एवं द्वितीय संस्करण पाठकों की मांग पर पुनः सन् १६६४ में प्रकाशित हुआ। इसमें पंजाब प्रान्त के गौरवशाली जैनाचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज का जीवन चरित्र है तथा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत है। इसमें २१ परिच्छेदों के माध्यम से उनके बाल्यकाल, वैराग्य, श्रमण-दीक्षा, आचार्यपद, त्याग और तपस्या, सेवाकार्य आदि का लगभग १८० पृष्ठों में वर्णन दिया गया है। ग्रन्थ की भाषा सरल, प्रवाहयुक्त व सरस है। प्रारम्भ में आचार्य प्रवर का शब्द-चित्र के द्वारा मार्मिक वर्णन किया गया है। कुछ अंश दृष्टव्य है –

"अमृतसर जैसी ऐतिहासिक नगरी के जौहरी कुल में उत्पन्न हुआ यह बालक हीरा, मणि, रत्न आदि का परीक्षक ही नहीं अपितु ज्ञान, दर्शन, चारित्र की रत्न-त्रयी का भी आराधक बन करके आत्म-स्वरूप का ज्ञाता, तप-संयम-ध्याता, श्रमण-शिरोमणि संघनायक आचार्य बनकर पंजाब प्रान्त के संत एवं श्रावक समुदाय को धर्म की दृढ़ता प्रदान करेगा तथा समाज को गौरवान्वित करेगा – यह किसे पता था?"

"मंझली/मध्यम अवगाहना, सुडौल भरकम शरीर, गौरवर्ण, विशालभाल, गम्भीर एवं मृदुस्वर, समचतुरस्र संस्थान – पर्यंकासन अर्थात्, चौकड़ी आकृति वाले, भव्य व्यक्तित्व से पूर्ण। स्वभाव से नम्र, शान्त, सरल, चतुर, समाधिवान्, ध्यानयोगी, तप संयम के उत्कट आराधक, स्व-दुख सहिष्णु, संतसेवी पुरुष, सिद्धांत में कर्मठ।"

ग्रन्थ लेखन की कठिनाइयां

इस जीवनचरित को लिखने में बड़ा भारी प्रयास करना पड़ा क्योंकि इसकी रचना के समय आचार्यश्री को दिवंगत हुए ६० वर्ष व्यतीत हो गए थे तथा वे संत पुरुष भी दिवंगत हो गए थे जो उनके निकट सम्पर्क में आए थे। आचार्य श्री आत्मारामजी ने इनका एक जीवन चरित्र लिखा था, उसी को इस ग्रन्थ का आधार बनाया गया है पर अधिकांश सामग्री संतों, साध्वियों, श्रावकों, श्राविकाओं से प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा भी एकत्रित की गई है। इस सम्बंध में अति महत्त्वपूर्ण सामग्री साध्वी श्री स्वर्णाजी से प्राप्त की थी, उन्होंने महार्य्या श्री मेलोजी, श्री खूबांजी व श्री ज्ञानाजी से प्राप्त की थी। श्री स्वर्णाजी ने उन सब परंपरागत पत्रों को सुरक्षित रखा जिसमें आचार्यश्रीजी के लिखित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्मरण तथा साध्वी परंपरा का इतिवृत्त था।

संसार से विरक्ति

इस ग्रन्थ के चरित्र नायक जौहरी अमरसिंह का १६ वर्ष की अल्पायु में ही विवाह हो गया था। उनके तीन पुत्र व दो पुत्रियां थी। दो पुत्रों की मृत्यु अल्पायु में ही हो गई थी तथा तीसरा पुत्र भी आठ वर्ष की उम्र में चल बसा था। इस घटना ने उनके हृदय में संसार से विरक्ति उत्पन्न कर दी और उन्होंने वि.सं. १८६८ में पंडितवर्य श्री रामलालजी महाराज से दीक्षा ग्रहण कर ली। आपने आगमों का गहन अध्ययन किया और उसमें निष्णात बन गये। आप में ज्ञान प्राप्ति की अदम्य लालसा थी। वि. संवत् १६०३ में आपने लाला सौदागरमलजी, जो जैनागमों के वेत्ता सुश्रावक थे, से तीस आगमों का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। आप कुशाग्र बुद्धि के थे अतः बहुत कम समय में आगम-शास्त्र के गम्भीर ज्ञाता बन गए।

समर्थ तार्किक

आपकी तर्क शक्ति बड़ी प्रबल थी। उन समय की परंपरा के अनुसार आपकी अनेक श्रावकों तथा साधुओं के साथ तत्त्व-चर्चा हुई और आपने सभी की शंकाओं का समाधान किया। पूज्य श्री सुमन मुनिजी ने इन सब चर्चाओं का अत्यंत ही मार्मिक एवं सटीक वर्णन इस ग्रन्थ में किया है। आपने वि.सं. १८१३ में आचार्य पद ग्रहण किया। उस समय आपके संत-साध्वी परिवार की संख्या ३६ थी। इस प्रकार आप पंजाब स्थानवासी समुदाय के आचार्य बने।

महान् तपस्वी एवं सेवाव्रती

आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज का जीवन तपः साधना से परिपूर्ण था। आपकी तपस्या वृत्ति का संक्षिप्त वर्णन जो कि लेखक ने दिया है, बड़ा ही प्रेरणास्पद है:-

१) आपकी दैनिक क्रिया के अंग थे – दस प्रत्याख्यान, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रस-परित्याग आदि।

२) आपने अनेक उपवास व लम्बी तपस्याएं की। प्रत्येक चातुर्मास में आप अठाई तप करते थे। इस प्रकार आपने चालीस अठाई के तप किये।

३) अनेक उपधान-आयंबिल के तप किये।

४) आप प्रतिदिन स्वाध्याय, वैय्यावृत्य-सेवा व शास्त्रादि लेखन कार्य करते थे।

५) आप प्रतिदिन 'नमोऽत्थुणं' पाठ का ध्यान करते थे।

आपके श्रीसंघ में एक मुनि को कुष्ठ रोग फूट निकला। उनका सारा शरीर दुर्गन्धिपूर्ण व घृणास्पद हो गया था। कोई भी उनकी सेवा करने उनके निकट नहीं जाना चाहता था। आचार्यश्री को ज्ञात होते ही वे स्वयं ही वहाँ चले गए तथा उन्होंने मुनिजी की बहुत सेवा की। सब ने बहुत मना किया पर आप नहीं माने। आप उन्हें अपने हाथों से आहारादि खिलाते तथा उनके वस्त्र प्रक्षालन आदि करते थे। समुचित चिकित्सा व आपकी सेवा के फलस्वरूप छः महीने में ही मुनिजी की काया कंचनवर्णी हो गई, वे रोगमुक्त हो गए।

आगमवेत्ता तथा ध्यान-योगी

आपने सैकड़ों साधुओं एवं साध्वियों को आगम का ज्ञान प्रदान किया। आपकी अध्ययन शैली बड़ी ही संक्षिप्त, सुस्पष्ट तथा सरल थी जिससे जिज्ञासु को तत्त्वों का ज्ञान सहजता से हो जाता था। अध्यापन का विषय कितना ही कठिन क्यों न हो आप उसे सरलता से समझा देते थे। श्रोता के मन में तर्क/शंका आदि उत्पन्न कर विषय का परिपूर्ण विश्लेषण करना आपकी विशेषता थी। आप मूल पाठ के साथ टब्बा, चूर्णि, अवचूरि आदि तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत की टीका का भी आश्रय लेते थे। यही कारण है कि प्रतिपाद्य विषय चाहे कितना ही जटिल, शुष्क एवं दुरुह क्यों न हो, आपके लिए सुपाठ्य था तथा आप उसे अन्यों को भी समझा सकते थे।

आप एक कुशल लिपिक थे तथा आपके अक्षर बहुत सुंदर थे। आपके हाथ से लिखी हुई दो कृतियां **"दया शतक"** तथा **"बतीस अंक बोल"** आज भी उपलब्ध हैं।

आप एक महान् ध्यान योगी थे तथा प्रतिदिन तीन घंटों तक ध्यान किया करते थे। आपने **"नमोऽत्थुणं"** प्रणिपात सूत्र का ध्यान पांच की संख्या से प्रारम्भ करके सात सौ तक बढ़ा कर ध्यान में स्मरण व रमण करने का अभ्यास कर लिया था। आपके समाधि-मरण के समय आपके शिष्य समुदाय की संख्या नब्बे तक अभिवृद्ध हो गई थी। उनमें से कई दीर्घ तपस्वी तथा कठोर व्रतों का पालन करने वाले थे। उनकी अनेक रोमांचकारी एवं त्याग व तपस्या की प्रेरणा देने वाली घटनाएं इस ग्रन्थ में संग्रहीत हैं।

समाज सेवा के कार्य

आपकी प्रेरणा पाकर श्रावकों श्राविकाओं ने अनेक शिक्षालयों, छात्रावासों व ज्ञानालयों का निर्माण किया जिनमें से कुछ निम्न हैं :-

श्री अमरसिंह जैन होस्टल, लाहौर (चण्डीगढ़)

श्री अमरसिंह जैन जीवदया भंडार, अमृतसर

श्री अमरसिंह जैन हाई स्कूल, जम्मू

श्री अमरसिंह जैन ब्लाक, जैन हायर सेकेंडरी स्कूल, फरीदकोट आचार्य श्री अमरसिंह व्याख्यान हाल, जैन स्थानक, कोटकपुरा इत्यादि।

इस पुस्तक का परिशिष्ट बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें आपने आचार्यप्रवर की वंशावली, पंजाब-परंपरा, संत-परंपरा तथा साध्वी परंपरा पर विशद प्रकाश डाला है। श्री सुमन मुनिजी ने इस परंपरा का अत्यंत गहरा अध्ययन करके तथा बहुत ही परिश्रम से जो सामग्री एकत्रित की है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है तथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार पंजाब श्रमणसंघ के गौरवपुरुष आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज एवं उनके शिष्यों के जीवन चरित्र की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करके लेखक ने एक ऐतिहासिक कार्य किया है जो स्तुत्य है। इस ग्रन्थ की रचना के बाद पंजाब के श्रमणों एवं श्रमणियों के अनेक अभिनन्दन ग्रन्थ व चरित्र-ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और उन सब में इस ग्रन्थ की सामग्री को उद्घृत किया है। इससे इस ग्रन्थ का महत्त्व समझा जा सकता है।

✣ ✣ ✣

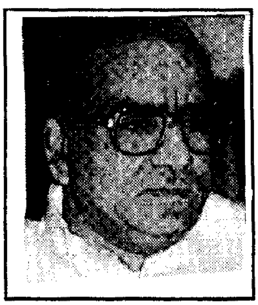

कर्मठ समाजसेवी एवं प्रबुद्ध लेखक श्री दुलीचन्दजी जैन का जन्म १-११-१९३६ को हुआ। आपने बी.कॉम., एल.एल.बी. एवं साहित्यरत्न की परिक्षाएं उत्तीर्ण की। आप विवेकानन्द एजुकेशनल ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं तथा जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान के सचिव हैं। आपने 'जिनवाणी के मोती' 'जिनवाणी के निर्झर' एवं 'Pearls of Jaina Wisdom' आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों की संरचनाएं की हैं। आप कई पुरस्कारों से सम्मानित – अभिनन्दित।

– सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org